Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 6, May-2019, ISSN 2230-7540

एकेश्वरवादी आन्दोलन के प्रणेताओं में संत रामदास के विचार: एक मूल्यांकन

Kumari Neelam*

Principal, Department of History, Birchandra Patel Smarak College, Desari, Vaishali, B.R.A. Bihar University, Muzaffarpur

सार – ***भारत वर्ष के क्षितिज पर यह शतब्दी अपने में अनेकानेक विशेषताएँ लेकर चमकी थी। भारतीय मानव समाज को विभिन्न क्षेत्रों में अग्रणी अनेकानेक महान व्यक्ति प्रदान किये। अन्य क्षेत्रों के अतिरिक्त धार्मिक क्षेत्र में भी कबीर, गुरूनानक, रैदास, दादु, गुरू, अर्जुन, नानक देव हरिदास, धन्नाजाट के क्रांति, पैदा कर दी थी।[1] इन संत कवियों की वाणी में धार्मिक अवतारना में हिन्दू एवं मुसलमानों के विथ्याचार विचारों पर प्रतिक्रिया व्यक्त की गई है। इन लोगों ने तत्कालीन धर्म में विद्‌यमान रूढ़ियों और अन्धविश्वासों को समाप्त करने का प्रयास करते हुए धर्म के सहज रूप को प्रसारित करने का पूर्ण प्रयत्न किया है। इन संतों का धर्म सात्विकता, सत्याचरण एवं मन की शुद्वता पर आधारित है। 'वाहयाडम्बरों को वे मिथ्या समझते हैं। उनके समस्त धार्मिक तथ्य सत्य और सदाचार पर निर्भर थे उन्होंने धर्म साधना में सत्संगति साधु सेवा और गुरू सेवा की बलपूर्वक निरूपण किया।[2]***

---------------------------------x---------------------------------

भूमिका

भारत वर्ष प्राचीन काल से दार्शनिकता प्रधान देश रहा है। अध्यात्म संबंधि भिन्न-भिन्न विचारधारा की परम्परा वेदों से चली आ रही है दादू कहते हैं ईश्वर एक है। राम रहीम और अल्लाह उसी के विभिन्न नाम हैं। दादू ने ईश्वर को राम नाम ही दिया और उसी आधार पर ब्रहम और जीव का स्वामी सेवक संबंध भी माना है।[3]

निर्गुणवाद के प्रवर्तक संत कबीर के समय चारों ओर अंधकार के बादल छाए हुए थे और हिन्दू समाज का मानसिक और नैतिक ह्रास हो रहा था। चारो ओर जाति-पाति, मूर्ति पूजा एवं कर्मकाण्ड आदि का बोल वाला था। दिनकर जी के अनुसार "कबीर ने जो यह मंत्र फूका कि हिन्दुत्व और इस्लाम दोनों के दोनों अधूरे धर्म हैं तथा राम और रहीम को एक नहीं मानना बिल्कुल मुर्खता की बात है" कबीर ने अपने सिद्धांतों के प्रचार हेतु संगठन या सम्प्रदाय नहीं बनाया। बल्कि यह काम उनके शिष्यों ने अपने गुरू के उपदेशों को लोगों तक पहुश्चा कर किया वेशक उनको इसमें पूर्ण सफलता तो प्राप्त नहीं हुई परन्तु इसमें वह पूरी तरह असफल भी नहीं कहे जा सकते।"[4] कबीर मुसलमानी एकेश्वरवाद को नहीं अद्‌वैतवाद को स्वीकारते थे।[5] नामदेव, कबीर, नानक, रैदास, दादू आदि निर्गुणधारा के संतों द्‌वारा पूर्ण वेग से समूचे राष्ट्र में बहने लगी भारत के सामान्य जन इस धारा में बह गये।[6]

दादू का स्पष्ट मत है कि ईश्वर को ढूंढ़ने के लए कोई काशी जाता है और कोई मथुरा। परन्तु परमतत्व तो हृदय के अंदर ही निवास करता है। तीर्थों तथा मूर्ति पूजा का सभी मध्यकालीन संत कवियों ने विरोध किया है उनका मत है कि ऐसे लोग परमतत्व को कभी प्राप्त नहीं कर सकेंगे जो पाखंड, मूर्ति-पूजा, ढोंग, तीर्थों में विश्वास रखते हैं। ईश्वर की अनुभूति तो अन्तःकरण से होती है। ब्रहम प्रपंच केवल दिखावा मात्र है। समाज में जहां त्रुटियां देखी, स्वार्थ व असत्यता का बोलवाला देखा, वहीं विरोध प्रकट कर दिया समाज में जहां भी गलत कुरीतियां देखी उन पर उन्होंने प्रहार कर दिये। इन प्रहारों में सबसे प्रबल व प्रखर वाणी के लिए पूर्व में कबीर और सबसे मधुर व सरल वाणी के लिए हुए पश्चिम में दादू ने तत्कालीन जन-सामान्य को नवीन दृष्टिकोण तथा मौलिक सूझ-बूझ का परिचय दिया।[7]

इस काल में सामाजिक संकीर्णता तथा जटिलता का भाव इतना प्रबल होता गया कि हिन्दू समाज क्रमश' जातियों का एक समूह मात्रा बन गया था। जिसमें कई प्रकार की सामाजिक बुराईयां और कुरीतियाँ फैल गईं[8] ऊँच-नीच का

www.ignited.in

भेदभाव, छुआछूत, वर्ण व्यवस्था आदि को बढ़ावा मिला। अब उनमें विवाह-भोजनादि के नियम कड़े कर दिये थे। सवर्ण जातियों के लोग नीची जातियों के लोगों से घृणा करने लगे[9] जो अपनी जाति के नियमों का उल्लंघन करता उसको समाज से बहिष्कृत किया जाता था। मुस्लिम समाज के देखा-देखी तथा अधिकारियों की रसिकता से रक्षा करने के लिए हिन्दू समाज में परदे और बाल-विवाह का प्रचलन हुआ था" मुसलमानों के भय और अत्याचारों के कारण बाल्यावस्था में विवाह करा देने के लिए नये नियम बनाए गये। कन्याओं के विवाह 7, 10 या अधिक से अधिक 12 वर्ष की आयु में किए जाने लगा।[10] मध्यकाल के अन्तर्गत बाल-विवाह और परदा-प्रथा के कारण लड़किया को अलग रखा जाने लगा और स्त्रियों की दशा पहले से भी वदतर होती गई। सती प्रथा भी प्रचलित थी। विधवा औरत को दो वातों में से एक को चुनना ही पड़ता था। या तो आजीवन विधवा रहे या मृत पति को चिता पर सती हो जाये। इसलिए वह सती होना ही पसंद करती थी बड़े-बड़े मंदिरों में देवदासियां भी रहती थी। मंदिर में सुन्दर कन्याओं को रखा जाता था। मध्यकाल में कई स्त्रिया शसिकाएं रही थी। वहु-विवाह प्रचलित थे लेकिन राजा या राजकुमार कई विवाह कर सकते थे। लेकिन सामान्य लोग एक ही विवाह करते थे।[11] हिन्दुओं को जहां एक ओर विदेशी शासकों से आत्मरक्षा करनी पड़ रही थी तो दूसरी ओर हिन्दू समाज संघर्ष व सुरक्षा के बीच से प्रभावित हो रहा था। यही कारण है कि इस काल में एक ओर तो अनेक वीर-पुरुषों ने विदेशियों से संघष्र करते हुए अपने प्रोणात्सर्ग किए तो दूसरी ओर अनेक भक्त और संत कवियों ने भारतीय समाज को शील, संतोष, व्याज, परोपकार के आधार पर नवजीवन प्रदान करने का प्रयत्न किया। इस अविरल संघर्ष व सुरक्षा के युग में उनकी वर्ण व्रवस्था तथा जातीय पद्धति को गहरी चोट पहुँची समाज में बिखराव आया भोजन विवाह तथा सामाजिक परम्परा के नियम सख्ते हुए।[12]

संत रविदास का परिचय

संत रविदास का जिस मध्य युग में अविर्भाव हुआ, उस समय देश और समाज की विषम स्थिति थी। देश में मुस्लिम शासन होने के कारण धार्मिक कट्टरता पंथता जोरों पर थी। सता के जोर पर, वैभव का प्रलोभन दर्शाकर धर्म परिवर्तन कराने का अभियान तेजी पर था, दूसरी ओर ऊँच-नीच, जात-पांत, छुआछूत की भावनाओं में डूबा तथा अनंत कुरीतियों व कर्मकांडों में उलझा हिन्दू धर्म खंड-विखंड होते हुए भी देवी देवताओं व भगवान तथा अवतारों के घेरे में घिरा हुआ था, दोनों ही धर्मावलम्बी समाज के मध्यवर्गीय नीची व छोटी जाति के लोगों के उत्पीड़न व शोषण में जुटे थे। धर्म उस समय ऊँचे लोगों के पास कैद था। संत रविदास जात-पांत, भेदभाव, ऊँच-नीच के घोर विरोधी थे, उनकी दृष्टि में वर्ग, वर्ण, कृत्रिम है, काल्पनिक है जो कर्मकांडिक ने अपने निजी स्वार्थ के लिए बनाये हैं।[13]

संत रविवाद ने जहाँ धार्मिक क्षेत्र में महान योगदान दिया वहीं सामाजिक क्षेत्र में भी कम नहीं है, उन्होंने जन्म के आधार पर वर्ण व्यवस्था का घोर खण्डन किया और बताया कि कोई भी व्यक्ति जन्म से बड़ा या छोटा नहीं है, बल्कि वह अपने कर्म से बड़ा या छोटा बनता है उन्होंने कहा सभी जाति एक समान है फिर असमानता क्यों? इनका कहना था कि प्रभु सर्वग विद्यमान है। वह निराकार तथा सबके दिलों में रमा हुआ है। उसे पाने के लिए किसी मंदिर-मस्जिद में जाकर सिर झुकाना आवश्यक नहीं। वह दिल में खोलने से ही मिल सकता है।[14] रविदास ने प्राचीन वैदिक परम्परा का अनुसरण करते हुए उपदेश दिया कि परमात्मा एक ही है। उन्होंने कहा कि एक ही ब्रह्मा राम, रहीम आदि अनेक नामों से जाना जाता है। एक ही ब्रह्मा की उपासना करनी चाहिए उसे छोड़कर जो अन्य की पूजा करते हैं वे व्यक्ति सदा ही नराश होते हैं। वे राम के भक्त थे और सदैव कार्य करते समय भी राम का स्मरण करते थे।"

लेकिन यह राम दशरथ का बेटा राम न होकर सर्वव्यापक सबके ह्रदयों में स्थित राम था जो सर्वत्त विद्यमान है।[15] रविदास रामनंद जी के 12 शिष्यों में से एक थे जिन्होंने अपनी सखियों और दोहों द्वारा सारे देश में भ्रमण करते हुए जीवन में विभिन्न विषयों पर उपदेश दिया। वह तत्कालीन सभी संतों और उदेशकों में क्रांतिकारी थे। लेकिन उनका स्वागत विनम्र और सरल था। क्रांतिकारी इसलिए कि उन्होंने डटकर उस समय में समाज में प्रचलित अंधविश्वास, मूर्ति पूजा और वर्ण व्यवस्था का खण्डन किया तथा जनसाधारण को धर्म में वास्तविक स्वरूप समझाया।–[16]

संत रविदास के विचार

रविवाद ने मन को प्राथमिकता दी। इस समय मन्दिर विलासिता के केन्द्र बन चुके थे। देवदासी प्रथा जिन आदर्शों से प्रारंभ हुई वे समाप्त हो चुके थे। अब वे प्रत्यक्ष रूप से वेश्यावृत्ति करती थी और यह व्यभिचार मंदिरों और भगवान की ओट में होने लगा था। सोमनाथ के मंदिर में ही पांच सौ नर्तकियाँ थी तीन सौ गायन वादन करने वाले थे। मध्य युग में अनेक अंधविश्वासों को भी प्रत्यक्ष रूप से प्रश्रय मिला। कहीं मंदिर के निकट रेंगने या टखनों के बल चलने की प्रथा थी। कहीं देवताओं के चिन्ह अंकित करने की प्रथा थी। कहीं

तीर्थ जाते समय रतन की सुई से गाल और चिव्हा चिखाने की प्रथा थी कहीं नरबलि की।[17]

रविदास, कबीरदास, नानू, नानक देव आदि संतों ने अपनी वाणी के आलोक से ऊँच-नीय, अस्पृश्यता कर्मकाण्ड और पाखण्डों का विरोध् कर समाज को एक ऐसी दिशा प्रदान की जिसके आलोक में युगों की काल संधियों में छिपी सिपाही कलौंस को पौधकर एक अलौकिक आलोक का प्रचार किया। संत रविदास की वाणी को हमें सामाजिक वैषम्य और आज की दलित जातियाँ ऊँच-नीच वर्गों में बंटे समाज की भूमिका में रखकर देखना होगा।[18]

रविदास ने ब्राहमण और चाण्डाल को जन्मतः समान बताते हुए यह कहा है कि दोनों के अन्दर ईश्वर रूपी ज्योति एक समान ही है।[19] सभी प्राणी ईश्वर के पुत्र हैं। उनके यहाँ जाति पांति नहीं है। जाति-पाति तो मानव समाज की ही देन है। इसलिए जो मनुष्य प्रभु शरण में जाने की इच्छा रखता है उसे जाति-पाति को त्यागना पड़ेगा।[20] केवल जन्म से हीं कोई ऊँच-नीच नहीं होता। जैसा कर्म करता है उसे उसी के समान आदर-अनादर मिलता है। नीच तो नीच कर्म करने से होता है नीच जाति में जन्म लेने से नहीं।[21] इमें उच्च जाति की नहीं अपितु उच्च गुणों का आदर करना चाहिए। भक्ति माला धारण करने, केश कटवाने अथवा तीर्थों की यात्रा करने से नहीं होती, न ही प्रभु की मूर्ति के चरण धेने के पाखण्ड द्वारा संभव है। भक्ति तो ईश्वर के साथ भावनात्मक लगाव से संभव है। बाकी सभी बाह्याडम्बर मिथ्या है।[22]

रविदास ने जातिप्रथा का विरोध ही नहीं किया अपितु निम्न जाति का होते हुए भी श्रेष्ठ जाति के मिथ्याडम्बरवादियों से अधिक सम्मान पाकर यह सिद्ध कर दिया कि सदाचार, इमानदारी, श्रम के द्वारा कोई भी व्यक्ति महान बन सकता है 'चमार' होने का कोई दुख नहीं है वे बेधड़क चमार कहते थे।[23] वे भक्ति के लिए घर-घर छोड़कर वन-गमन एवं वहाँ निराहार रहकर घोर तप करने के पक्ष में थे। वे भगवान बुद्ध की भाँति 'मध्यम मार्ग' के प्रस्तोता थे। बुद्ध ने बताया था कि जिस तरह यदि वीणा के तारों को आवश्यताधिक कस दिया जाय तो वे टूट जायेंगे और यदि उन्हें ढीला छोड़ दिया जाय तो सुर ठीक नहीं निकल पायेगा, उसी तरह यदि शरीर को अत्यधिक कष्ट दिया गया तो शरीर क्षीण हो जाने के कारण अधिक दिन तक भक्ति सम्भव नहीं है। और यदि विषय भोगों रूपी ढील छोड़ दी गई तो भक्ति असम्य हो जायेगी। उन्होंने स्पष्ट किया कि मनुष्य गृहस्थी में रहकर भी काम, क्रोध, मद, लोभ, अहम् आदि पर विजय पाता हुआ भगवान की भक्ति में लीन रह सकता है उसका स्पष्ट मत है कि भक्ति के लिए एकांत स्थान या वन जाने की आवश्यकता नहीं है।[24] रविदास ने पैतृक व्यवसाय अपनाकर श्रम को महत्ता प्रदान की। इससे एक ओर तो श्रम का महत्व बढ़ा दूसरी ओर अन्य साधु संतों की कर्मण्यता एवं भिक्षावृत्ति के विरुद्ध भी संकेत मिला। श्रम साधना को ही रविदास ने ईश्वर भक्ति माना है।[25]

जाति-पाति की भांति, जन्म आधारित वर्ण-व्यवस्था की संत रविदास को आमन थी। उनका कर्म में विश्वास था, कर्म ही उनकी कसौटी थी और कर्म ही उनके लिए वर्ण-विधान तथा वर्ण-व्यवस्था का आधार था उनकी स्पष्ट कल्पना थी कि जन्म से न कोई ऊँच होता है, न नीच न पूज्य होता है, न व्याग्य, न ब्राहमण होता है, न शुद्र गुण कर्मों से ही कोई श्रेष्ठ या नेष्ट बनता है। अतः उनके लिए गुणवान शूद्र वो पूज्य है, गुणहीन ब्राहमण नहीं।[26]

रविदास ने धर्म के क्षेत्र में वाहडम्बरों, अवतारवाद, वहुदेववाद, मूर्ति पूजा, पंथवाद आदि का खंडन किया है। इन्होंने सत्संग, हृदय की पवित्रता, सहजीकरण और मानवतावाद पर बल दिया है। हिन्दू और मुसलमान दोनों के क्रिया-कलापों का खंडन किया है और दोनों से प्रेम करने की शिक्षा दी है। उनके अनुसार ब्राहमण और मौलवी सभी परमात्मा के तेज से उत्पन्न हुए हैं और शरीर, रक्त और मांस एक समान है। ब्राहमाचार के खंडन् से उनका तात्पर्य किसी नवीन धर्म की स्थापना से नहीं था वरन् इनके मूल में असत्य का निराकरण था। बाहरी साधनों का विरोध करते हुए और उनकी व्यर्थता प्रतिपादित करते हुए वे कहते हैं कि हे राम! मैं तेरी पूजा में भला क्या चढ़ाऊँ? फल फूल तो मिलते नहीं हैं। दूध बछड़े ने जूठाकर दिया है। फूलों को भौंरों ने सूंघ लिया है। जल को मछली ने झुठा कर दिया है। हे राम मैं तो सहज रूप में मन ही मन तेरी साधना करता हूँ।[27] रविदास ने समाज और अध्यात्म दोनों स्तरों पर संघर्ष किया। जिस ईश्वर को सवर्ण समाज पूजता हो, उसे दलित समाज कैसे पूज सकता था। अतः रविदास की विवशता थी कि उन्हें निर्गुण भक्ति को अपनाना पड़ा। उनका ईश्वर सदैव उनके हृदय में रहता था, किसी मंदिर में नहीं। यह शून्य निरंजन, अगम्य, वर्णानातीत और सर्वव्याप के ईश्वर किसी वर्ण विषय के लिए नहीं वरन् मानव मात्र के लिए उपास्य है। रविदास ने सहज प्रेम साधना को अधिक बल दिया है। जब तक साधक का हृदय सहज प्रेमासिक्त होकर परमात्मा में लीन नहीं होता तब तक उसे पूर्ण सफलता नहीं मिलती। प्रेम आकर्षण शक्ति का नाम है और ईश्वर प्रेम स्वरूप है कबीर की तरह रविदास भी प्रेम के कारण राम का नाम रटने पर भी नहीं छूटता है। उनकी प्रेम भक्ति का एक उदाहरण है[28] समानता एवं कर्म के सिद्धांत

www.ignited.in

पर आधारित सहज, सुसंगठित एवं अनूठी वर्ण व्यवस्था गतिशीलता के प्रवाह में उत्तर वैदिक काल तक आते आते जब जन्म पर आधरित होकर जाति व्यवस्था के रूप में परिवर्तित हो गई, तभी से भारतीय सामाजिक व्यवस्था में शूद्र कहे जाने वाले वर्ण की सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति अद्योगति दिशा में उन्मुख हो गई।[29]

रविदास के युग में धर्म का अजीव संकुचित रूप हो गया था। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अंधविश्वास कुरीतियां एवं विभिन्न बाहाचारों के बंधन में जकड़े हुए थे रविदास ने भी अन्य संत कवियों के समान ही धर्म के सत्य स्वरूप की प्रतिष्ठा का प्रयास किया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक ओर तो उन्होंने अपने काव्य में धार्मिक कर्मकाण्डों एवं वाहाडम्बरों का विरोध किया तो दूसरी ओर प्रेम, सत्संगति, सत्य, अहिंसा, करूणा आदि उदात्त मूल्यों की ओर जन साधारण को प्रवृत्त करने का प्रयास किया। जनता को भ्रमित करने वाले धर्म के ‘ठेकेदार पांडे’ को सम्बोधित करते हुए वे कहते हैं-“हे पांडे! तुम्हारी कर्मकाण्ड युक्त भावना और हरि के वास्तविक स्वरूप में पर्याप्त अंतर है तू जो रूंड होकर सेवा और पूजा करने का उपदेश देता है, वह भ्रम के सिवाय कुछ भी नहीं है। माला, तिलक, छापा सुन्दर वेष सब यह यम का पाश है - यदि तुम हरि से अपना नाता जोड़ना चाहते हो तो संसार से विरक्ति आवश्यक है।[30] बाह्य वेशभूषा पहनकर मनुष्य विषय विकारों में लिप्त रहता है बाहरी भ्रमजाल में फंसा रहता है, वह ईश्वर का मर्म नहीं जान सकता। माथे पर चंदन का तिलक लगाने या गले में माला पहने से शांति नहीं मिलती[31] उन्होंने वर्ण व्यवस्था का विरोध करते हुए धर्म, जाति, अर्थ-किसी भी आधार पर आधृत वर्ग-वैषम्य के प्रति आक्रोस व्यतित किया। उन्होंने सामाजिक भेदभाव और छूआछूत से उत्पन्न होने वाली मानसिक यांत्राणा जिसके वे स्वयं भुक्तभोगी थे का प्रतिपादन अनेक स्थलों पर किया है।[32] इन्होंने हिंदु-मुस्लिम में कोई अंतर नहीं माना क्योंकि सभी मनुष्य जन्म से समान हैं। सभी में रक्त मांस एक जैसा ही है फिर मनुष्य क्यों उनमें भेद करता है।[33]

इन्होंने समाज में प्रचलित धर्मिक कर्म-काण्डों, वाह्य वेष-भूषा इत्यादि का विरोध किया है। इन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त विभिन्न बुराईयों यथा-मद्यपान, मांसाहार, धन संचय, विभिन्न विषय-विकारों का प्रतिपादन करते हुए उनके प्रति तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की है तथा लोगों को सन्मार्ग की ओर जाने को प्रेरित किया है। उन्होंने मदिरा पीने वाले लोगों को राम के रस का पान करने के लिए कहा जिसका नशा उतरता ही नहीं।[34] शंकर के अद्वैतवाद के अनरूप ही रविदास ने भी मिथ्या माना है। उन्होंने इस संसार को स्वप्नवत् स्वीकार करते हुए इसे नश्वर माना है।[35] इनका वर्णन सीधा-साधा था जो अनपढ़ समाज के लिए वरदान बन गया। संत रविदास समाज को सुधारने की चेष्टा कवीर की भांति आक्रमण वाणी में नहीं करते। वे अपनी वाणी में अत्यंत विनमंता से मनुष्य के मन की उस वृति का परिष्कार करना चाहते हैं, जिसके चलते कुरीतियाँ उत्पन्न होती है। यही कारण है कि वे बार-बार स्वयं को चमार कहकर वस्तुस्थिति से मुँह नहीं मोड़ते।[36]

इन विचारकों ने जाति-पाति, ऊँच-नीच, वाह्याडम्बरों का विरोध किया। रविदास वाणी में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता अपने उदार रूप में मिलती है। इसमें विभिन्न धर्मों और वर्गों का महत्व पैदा करने का प्रयत्न किया गया है।[37]

निष्कर्ष

वस्तुतः रविवाद एक मौलिक और महान विचारक थे। उन्होंने अनेक प्रकार के परमतत्व को जानने का प्रयत्न किया था। इसी सहानुभूति को इन्होंने अपनी वाणी के माध्यम से अभिव्यक्ति दी। भारतीय चिंतन परम्परा में प्रधान तथा ब्रह्म के दो रूप मिलते हैं। रविदास ने व्यक्त और अव्यक्त रूप का वर्णन किया है। इस रूप में सेत जी की भक्त हृदय भावावेश में आकर अपनी रहस्यानुभूति और भक्ति साधना को अभिव्यक्ति करता हैं इस रूप में इनका ब्रह्म रूप बना रहता है।

सन्दर्भ

1. डॉ. वंशी बलदेव, दादु जीवन दर्शन, पृ. 20.
2. वही, पृ. 143.
3. वही, पृ. 41.
4. वही, पृ. 81.
5. हरमेन्द्र सिंह वेदी, उत्तर भारत के भक्ति आन्दोलन में कवीर की भूमिका, पृ. 31.
6. द्विवेदी हजारी प्रसाद, मध्यकालीन धर्म साधना, पृ. 51.
7. डॉ. वलदेव वंशी, दादू जीवन दर्शन, पृ. 94-95.
8. चतुर्वेदी परशुराम, संत साहित्य की भूमिका, पृ. 8.

9. रामवहोरी शुक्ल, भागीरथ मिश्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 94.

10. ए.एल. श्रीवास्तव, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ. 20.

11. सिंह सरनाम, कबीर एवं विवेचना, पृ. 91.

12. शुक्ल और मिश्र, हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, पृ. 94.

13. गौतम मीरा, गुरु रविदास वाणी का महत्व, पृ. 404-405.

14. वही।

15. वही, पृ. 399-400.

16. वही, पृ. 399.

17. आदि गुरु ग्रन्थ साहिब, पृ. 858.

18. डॉ. लक्ष्मीशंकर गुप्त, भक्ति काल का विकास, साहित्यक निबंध, संपादक- डॉ. त्रिभूवन सिंह, पृ. 142

19. आजाद पृथ्वी सिंह, रविदास दर्शन, पृ. 65

20. वही, पृ. 120.

21. वही, पृ. 129.

22. वही, पृ. 131.

23. शर्मा, डाॅ. वी.पी., संत गुरु रविदास वाणी, पृ. 90.

24. आजाद पृथ्वी सिंह, रविदास दर्शन, पृ. 115.

25. आजाद पृथ्वी सिंह, रविदास दर्शन, पृ. 116.

26. गौतम मीरा, गुरु रविदास वाणी का महत्व, पृ. 220.

27. वही, पृ. 183.

28. वही, पृ. 182.

29. शर्मा वनी प्रसाद, संत गुरु रविदास वाणी, पृ. 125.

30. वही, पृ. 68.

31. वही, पृ. 77.

32. सिंघल डॉ. धर्मपाल, रविदास दर्शन, पृ. 281.

33. वही, पृ. 262.

34. वही, पृ. 242.

35. शर्मा डा. वनी प्रसाद, संत गुरु रविदास वाणी, पृ. 11.

36. संत रविदास, गुरुग्रंथ साहिव, पृ. 65.

37. सिंह योगेन्द्र, सम्पादक, संत रैदास, दिल्ली, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., 1972, पृ. 190.

Corresponding Author

Kumari Neelam*

Principal, Department of History, Birchandra Patel Smarak College, Desari, Vaishali, B.R.A. Bihar University, Muzaffarpur